यह 'पूज्यपादस्वामी' का बनाया हुआ इष्टोपदेश है। छठवीं गाथा का विशद अर्थ। क्या कहते हैं ? देखो! **ये प्रतीत (मालूम) होनेवाले जितने इंद्रियजन्य सुख व दुःख हैं, वे सब वासनामात्र ही हैं।** क्या कहते हैं ? इन इन्द्रियों से इस शरीर में ठीक होवे तो मुझे सुख, शरीर में अठीक होवे तो मुझे दुःख; पैसा अनुकूल होवे तो सुख, पैसा न होवे तो दुःख - ऐसी कल्पना, अज्ञानी की वासनामात्र है। परवस्तु कोई सुख-दुःख का कारण नहीं है। समझ में आया ?

आत्मा में आनन्द है — ऐसी जिसकी दृष्टि नहीं है; आत्मा में आनन्द है - यह धर्मदृष्टि है। धर्मी की दृष्टि आत्मा में आनन्द है। आत्मा ही स्वयं अनाकुल सच्चिदानन्द

सिद्धस्वरूप है — ऐसी जिसकी आनन्ददृष्टि है, उसे परपदार्थ में सुख-दुःख भासित नहीं होते। समझ में आया ? जिसकी धर्मदृष्टि हुई है; धर्मदृष्टि अर्थात् आत्मा का आनन्द स्वभाव है, आत्मा ही आनन्दस्वरूप है; आत्मा, वह स्वयं कहीं दुःखरूप नहीं है। वस्तु दुःखरूप हो नहीं सकती।

यह आनन्द है, अन्तर आत्मा में अनाकुल शान्तरस है। उसकी जहाँ दृष्टि है, धर्मदृष्टि हुई, वह पुण्य-पाप के भाव में भी सुख नहीं मानता और पर में भी सुख नहीं मानता तथा पर मुझे दुःख कारण है - ऐसा भी नहीं मानता। समझ में आया ? मात्र अज्ञानी, अपने आत्मा के स्वभाव की दृष्टि नहीं, जिसे धर्मदृष्टि नहीं; मैं शुद्ध चैतन्य हूँ और मेरा आनन्द मुझमें है — ऐसे श्रद्धा और ज्ञान जिसे सत्य नहीं, वह अधर्मदृष्टि-मिथ्यादृष्टि है।

ये प्रतीत (मालूम) होनेवाले जितने इंद्रियजन्य सुख व दुःख हैं, वे सब वासनामात्र ही हैं। इसे यह इन्द्रियजन्य सुख-दुःख लगता है, वह मिथ्या वासना के कारण (लगता है।) समझ में आया ? इन्द्रियों में, शब्द में, रूप में, रस में, गन्ध में, स्पर्श में, स्त्री में, मकान में, पैसे में, आबरु में (सुख लगता है।) वह तो परवस्तु है। धूल पर है। पर मुझे सुख-दुःख करनेवाला निमित्त है अथवा सुख-दुःख देता है, यह वासना ही मिथ्यादृष्टि की, अधर्मदृष्टि की, आत्मा के शुद्धस्वभाव की पराधीन दृष्टिवन्त की यह दृष्टि है। समझ में आया ?

जितने इंद्रियजन्य सुख व दुःख हैं, वे सब वासनामात्र ही हैं। स्त्री के शरीर में या इस शरीर में मुझे ठीक लगता है — इसका अर्थ यह हुआ कि वह पदार्थ और मैं दोनों एक हैं, इससे मुझे उसमें मजा (आता है।) ऐसी इसकी मिथ्या मान्यता पर को एक मानने से खड़ी हुई वासना, इसे सुखरूप शरीर और स्त्री, पैसा और मकान बाह्य पदार्थ अनुकूल - ऐसा यह अज्ञानी मानता है। आहाहा.. ! गुलाबभाई ! जरा सूक्ष्म सिद्धान्त है।

मुमुक्षु : बाहर की अनुकूलता....

उत्तर : बाहर में धूल में भी अनुकूलता नहीं। अनुकूलता कहना किसे ? अनुकूलता कहना किसे ?

भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने ऐसा कहा कि तेरा ज्ञान और तेरा आनन्द तुझमें हैं; पर में नहीं, क्योंकि जो भिन्न हो, उसमें

तेरा सुख-दुःख नहीं हो सकता। समझ में आया? तथापि अज्ञानी, अपने में आनन्द है - ऐसा भूलकर, आनन्द है - ऐसा भूलकर; इन स्त्रियों के शरीर, पैसा, यह परपदार्थ मुझे इष्ट है, यह मुझे सुखरूप है - ऐसी मान्यता-मिथ्यात्व की वासना खड़ी करता है। आहाहा...! समझ में आया?

मुमुक्षु : कब की बात है?

उत्तर : अभी की। कब की बात करते हैं? ऐ... जयचन्दभाई! कब की बात करते हैं यह? आज प्रातः उकताहट लेकर आये थे। दो-चार दिन हो और उकताहट लेकर आवे। अब जीना रुचता नहीं। कहाँ जाना? परन्तु बुढ़िया कह गयी है? मोहनभाई! बुढ़िया मर गयी तब थे या नहीं? दोनों थे या नहीं? आहाहा...! कोई डालता नहीं और कोई निकालता नहीं - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। इस परपदार्थ को मैं डालने जाऊँ - यह मान्यता वासना मिथ्याभ्रम अज्ञानी की है; क्योंकि जो परपदार्थ स्वतन्त्र है, उसका जाना-आना उसके स्वयं के ही कार्य के-पर्याय के कारण होता है। उसके बदले मूढ़ ऐसा मानता है कि मेरे कारण होता है; यह उसकी मान्यता मिथ्या वासना दुःखरूप है। आहाहा...! समझ में आया? कहो, चन्दुभाई! क्या करना यह? विषय तो ऐसा आया, देखो! **देहादिक पदार्थ न जीव के उपकारक ही हैं और....**

मुमुक्षु : देह से तो धर्म होता है।

उत्तर : धूल में भी धर्म नहीं होता। देह से धर्म होता होगा? इस मिट्टी से?

आत्मा, ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने सर्वज्ञज्ञान में **सव्वण्हुणाणदिट्ठो** उपयोगस्वरूप वह आत्मा भगवान ने देखा है। जानना-देखना अर्थात् जानने-देखने के स्वभाववाला भगवान आत्मा है - ऐसा भगवान ने देखा और तू ऐसा देख कि मैं तो जानने-देखनेवाला हूँ। समझ में आया? तो दूसरे किसी पदार्थ (से) मुझे सुख-दुःख होता है - ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि को होती है, सम्यग्दृष्टि को रहती नहीं। आहाहा...! गज़ब भाई! धर्म और अधर्म की दृष्टि (में) पूरा अन्तर है।

देहादिक पदार्थ... देहादिक शब्द पड़ा है, हों! शरीर हमें उपकारक है, निरोग है तो मुझे मदद करता है - ऐसा माननेवाला मूढ़ जीव है।

मुमुक्षु : परन्तु शरीर होवे तो उपवास हो, उपवास होवे तो धर्म हो।

उत्तर : धूल में शरीर होवे तो उपवास होता नहीं। यह तो उसमें कदाचित् राग मन्द करे तो वह शुभभाव हुआ, वह तो पुण्य (हुआ)। वह उपवास भी नहीं है। उपवास तो, आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप है - उप-उसके समीप में बसकर शान्ति प्रगट करे, उसे भगवान उपवास कहते हैं, बाकी सबको लंघन कहते हैं। आहाहा...! समझ में आया?

भगवान आत्मा वस्तु है या नहीं? यह पदार्थ है या नहीं? अरूपी भी वस्तु है या नहीं? एक भव में से दूसरे, दूसरे में से तीसरे अनादि से भटका करता है - तो वस्तु पदार्थ है या नहीं? उसमें अनन्त गुण हैं, शक्ति है। उसमें आनन्द, शान्ति, प्रभुता, स्वच्छता, विभूता आदि अनन्त गुण पड़े हैं। ऐसे आत्मा को जो न माने, ऐसे स्वीकार न करे तो उसे परपदार्थ देहादिक मुझे सुखरूप है - ऐसा अज्ञानी मानता है। सुख तो मैं हूँ। यह तुम्हारा फिर याद आया - मैं गीता हूँ यह (याद आया)। 'मैं गीता हूँ' — ऐसा शब्द बोली थी न? लड़की, गीता तो मैं हूँ। हमारे पण्डितजी ने लड़की से प्रश्न किया था। उनके भतीजे की लड़की। पण्डितजी तो भारी परीक्षा करनेवाले; इसलिए (पूछा) तू वहाँ तेरी माँ को पहिचानेगी? कि हाँ! काका को पहिचानेगी? कि हाँ! तेरे पिता को? हाँ! गीता को पहिचानेगी? यह क्या पूछते हो तुम? गीता तो मैं यह रही। ऐई...!

यहाँ कहते हैं कि आनन्द तो मैं यह रहा। आहाहा...! अरे..! भगवान! तू आनन्द देखेगा कहाँ पर में? शरीर में, पैसे में, अनुकूलता में, स्त्री में, मकान-महल में, पाँच लाख के मकान बनाये, उसमें (सुख मानेगा)? गुलाबभाई! यह बड़ी-बड़ी पुस्तकें गप मारने की बनाते हैं। भाई! गप्प-गप्प, हों! अन्दर कुछ तत्त्व नहीं होता। सरकार भी इनके जैसी सब मूढ़ हो, पास करनेवाले कैसे हों?

मुमुक्षु : सरकार तो पुस्तक पास करती है।

उत्तर : करे न। परन्तु उसमें मूढ़ ही मूढ़ सब इकट्ठे होकर करते हैं। पागल के अस्पताल में सब पागल ही पागल इकट्ठे होते हैं। मलूपचन्दभाई! डॉक्टर भी पागल। डॉक्टर कहना किसे?

यह भगवान आत्मा, देह के परमाणुओं से भिन्न, कर्म के रजकणों से भिन्न, और पुण्य-पाप के भाव कृत्रिम विकार हो, उससे भिन्न है। ऐसे आत्मा को आनन्दमय व

ज्ञानमय, प्रभुतामय और परमेश्वरमय और स्वच्छतामय मैं ही हूँ - ऐसा माने, वह वास्तविक डॉक्टर और वास्तविक वैद्य कहने में आता है। कहो, समझ में आया? यह डॉक्टर ऐसा कहे - तुझे यह दवा देता हूँ, तुझे अच्छा हो जाएगा, हों! तुझे अच्छा हो जाएगा। कहते हैं कि मूढ़ है - ऐसा कहते हैं यहाँ तो। ऐ... नवरंगभाई! यह बड़े डॉक्टर रहे, देखो न यह। भाई! तीन-तीन हजार महीने में कमाते हैं। ऐसा करे और ऐसा (करें), नाक का आपरेशन और... नाक के मुख्य है न? किसके? नाक के मुख्य सर्जन। आहाहा...!

अरे! भगवान! एक बात है कि तू कोई चीज़ है या नहीं? तू कुछ चीज़ है या नहीं? कोई भी चीज़ हो, उसमें उसकी शक्तियाँ और उसके गुण बसे होते हैं। वस्तु और वस्तु में वस्तु और वस्तु की शक्तियाँ और गुण न हों तो वह वस्तु ही न हो। यह रजकण मिट्टी है तो यह वस्तु है, तो इसमें गुण हैं। क्या (गुण हैं)? रंग, गन्ध, रस, स्पर्श है न? यह अवस्थायें होती हैं, यह सब उसकी शक्तियों का यह रूप है। तो आत्मा वस्तु है या नहीं? तो वस्तु है तो उसमें कोई शक्ति-गुण है या नहीं? इस आत्मा की शक्ति और गुण तो आनन्द, ज्ञान, शान्ति और प्रभुता - इसका गुण और शक्ति है। यह पुण्य-पाप हो, वह इसकी शक्ति नहीं, इसका स्वभाव नहीं। समझ में आया? खबर नहीं पड़ती, ऐसे अनादि से अन्ध (होकर भटकता है)।

कहते हैं, **देहादिक पदार्थ न जीव के उपकारक ही हैं और....** जो मूढ़ जीव 'शरीर से सुखी तो सुखी सब बातें' — ऐसा जो मानता है, वह महा मूढ़ वासना से-मिथ्यात्व से मानता है - ऐसा कहते हैं। पूछे, न्याय करे। कोई तोलेगा या नहीं? ऐसे का ऐसे अन्ध का अन्ध चलेगा कुछ? आत्मा है या नहीं? दूसरी चीजों में जैसे गुण देखता है, यह हिलना, यह जड़ का, रंग का, रस का, स्पर्श का, यह उष्ण-शीतल - ऐसा देखता है या नहीं उसमें? वैसे आत्मा है या नहीं? तो आत्मा में कोई गुण है या नहीं? तो क्या गुण है - इसका पता है इसे?

आत्मा में ज्ञान है, आनन्द है, शान्ति है। शान्ति अर्थात् चारित्र। समझ में आता है? प्रभुता है, विभुता है, स्वच्छता है - ऐसी अनन्त शक्तियाँ इसमें पड़ी हैं। ऐसे आत्मा को इस प्रकार अपने में प्रभुता से और आनन्द से भरा तत्त्व हूँ - ऐसी दृष्टि न करके, जो परपदार्थ

से मुझे सुख होता है, देह मुझे उपकार करती है - यह मान्यता मुझे सुख दे, (इसमें) मुझे सुख, आत्मा दे - ऐसा नहीं रहा। देह मुझे सुख देती है - यह मूढ़ की वासना-मिथ्या कल्पना से मानता है। न्याय से-लॉजिक से कुछ समझेगा या नहीं या ऐसे का ऐसा अन्ध चला जाएगा? कहो, बसन्तलालजी! आहाहा...!

भाई! तुझे पता नहीं। तेरा धर्म - 'वस्तु सहावो धम्मो' - वस्तु भगवान आत्मा में ज्ञान-आनन्द इसका धर्म-स्वभाव है। इस स्वभाव को न मानकर; मैं ज्ञान, मुझसे मेरा ज्ञान है, पर से नहीं; मुझसे मुझमें आनन्द है, पर से नहीं; मेरा विश्वास मुझसे है, पर से नहीं - ऐसा न मानकर, यह देह मुझे उपकारक है - ऐसा मानता है; पैसा मुझे उपकारक है, निरोगता मुझे लाभदायक है - यह मूढ़ पर में सुख की कल्पना मिथ्याभ्रान्ति से करता है, यह अधर्मभाव खड़ा करता है, जो आत्मा के धर्म-स्वभाव में नहीं है।

मुमुक्षु : पहले देव के सुख की व्याख्या करके फिर ऐसा कहा।

उत्तर : यह उड़ाया। यहाँ देव के सुख की बात की। इस मनुष्य की अपेक्षा कुछ वहाँ ठीक है, ठीक है - ऐसा बताकर वापस शून्य लगाया।

मुमुक्षु : उसका बहुत बखान किया था।

उत्तर : यह बखान किया था। कहो, समझ में आया? आहाहा..! अरे..! भगवान! तुझे तेरी कीमत नहीं और तू कीमत (महिमा) परपदार्थ को! परपदार्थ को कीमत देता है। देह बहुत अच्छा, हों! पैसा बहुत अच्छा! परन्तु तू वास्तव में अच्छा या नहीं? यह अपने नहीं। देह अच्छी होवे न तो ठीक... पुण्यशाली अच्छे... मूढ़ है,...! समझ में आया? वासनामात्र है, तेरी कल्पना मिथ्याभ्रम की है।

भगवान आत्मा, आनन्द और ज्ञान की मूर्ति अरूपी शीतल शिला... आत्मा शीतल अविकारी शिला चैतन्य की आनन्दकन्द पड़ी है। उसे अपने में, सुख और आनन्द और शान्ति न मानकर मूढ़ (जीव) देह, लक्ष्मी, इज्जत, स्त्री-पुत्री-परिवार - ये परपदार्थ हैं, इनमें मुझे सुख है (- ऐसा मानता है।) इसका अर्थ हुआ कि ये और आत्मा दो (को) एक माना; इसलिए कल्पना से खड़ा किया कि मुझे इनके कारण सुख है। आहाहा...! नवरंगभाई! समझ में आया? आहाहा...!

धर्मी... धर्मी (बोले), ऐसे धर्मी हुआ नहीं जाता कि चलो, सामायिक की, प्रौषध किया, प्रतिक्रमण (किया)। यह धर्म नहीं है। समझ में आया? ऐ... भगवानभाई! भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव आत्मा को ज्ञानमय, आनन्दमय कहते हैं और ऐसा है। वस्तु है तो कोई गुणमय है या गुणरहित है? तो शरीरवाला है आत्मा? शरीरवाला होवे तो शरीर भिन्न नहीं पड़े। यह तो (भिन्न) पड़ जाता है, एकदम भिन्न पड़कर कहीं चला जाता है। स्त्री... स्त्री पड़ी रहे और सब पड़ा रहे यहाँ। यदि इस वाला (शरीरवाला) होवे तो इसके साथ आना चाहिए। समझ में आया?

मुमुक्षु : थोड़े समय में....

उत्तर : थोड़े समय में भी कहाँ धूल में है? ऐसे भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। एक समय भी इसमें शामिल नहीं हुए। यह अज्ञानी की यहाँ बात करते हैं कि मूढ़ को स्वद्रव्य और परद्रव्य की भिन्नता का पता नहीं है; इससे देह मुझे सुखरूप है, उपकारक है - ऐसी उसकी मान्यता में खड़ी हुई वासना है, मिथ्याभ्रम खड़ा किया है। वापस यह शब्द 'वासनामात्र' कहकर कर्म से किया है - ऐसा नहीं कहा। यह तत्त्वज्ञान का अभाव है, इसलिए वासना खड़ी की है; कर्म से, कर्म से नहीं। आहाहा...! कर्म बिचारे जड़ परपदार्थ हैं। तू खड़ी करता है। आत्मा की शान्ति और आनन्दस्वरूप है, सच्चिदानन्द आत्मा स्वयं है - ऐसा परमेश्वर ने कहा है और ऐसा है। इसे न मानकर, देहादिक पदार्थ, जीव को उपकारक नहीं होने पर भी उपकारक मानता है।

है न? **देहादिक...** देह शब्द से शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार, पैसा, मकान, साबुन, मौसम्मी, लड्डू, चूरमा, गहने, वस्त्र... ऐई... क्या कहना यह तुम्हारे? घड़ी, पाँच सौ की घड़ी सोने का पट्टा डाली हुई। देखो! भाई! देखो तो सही, मैं कैसा सुन्दर हूँ! अर्थात् तू यह है? तू यह है? वह तो जड़ की दशा है; तो भी मैं ऐसा हूँ, इसका अर्थ कि शरीर की क्रिया, वह मेरी है - ऐसा माननेवाला है। समझ में आया? यह शरीर की अवस्था, वह मेरी, इससे मैं शोभता हूँ। मुझसे मैं शोभता हूँ (-ऐसा नहीं), मैं तो निस्तेज हूँ। आहाहा...! समझ में आया?

धर्मी नाम धरानेवाले भी, यह शरीर की क्रिया मुझसे होती है - ऐसा माननेवाले, यह

शरीर मुझे उपकारक होता है - ऐसा मानते हैं। शरीर होवे तो कुछ धर्म-क्रिया होवे, दया पले, व्रत पले — ऐसा माननेवाले सब मूढ़ मिथ्यादृष्टि, मिथ्यावासना का सेवन करते हैं - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा.. !

देहादिक पदार्थ न जीव के उपकारक ही हैं और न अपकारक ही। वापस नुकसान करनेवाले भी नहीं है। शरीर में रोग, निर्धनता, विधुरपना, बांझपना... समझ में आया ? विधुरपना, बांझपना, निर्धनपना या प्रतिकूल चीजें - ये आत्मा को अपकारक - नुकसानकारक है ही नहीं। परपदार्थ की प्रतिकूलता, वह आत्मा को नुकसानकारक है ही नहीं। मूढ़ ने माना है कि मुझे यह, मुझे यह (प्रतिकूलता है)। ऐसी कल्पना की वासना उसे अपकार-नुकसान करती है। वह परवस्तु नुकसान की कर्ता है ही नहीं। समझ में आया ? आहाहा.. ! यह दिशा सम्यग्ज्ञान की शिक्षा की है। समझ में आया ? आहाहा.. !

देखो ! कितना सरस आया है। भगवान ! तू तो आत्मा है न, प्रभु ! ये इन्द्रियाँ जड़-मिट्टी है। इनके लक्ष्य से तुझे कुछ ठीक लगे, यह तेरी वासना ही मिथ्यात्व है और ये इन्द्रियाँ तथा शरीर आदि अनुकूल हो और शरीर बाहर में बराबर अनुकूल काम दे अर्थात् मुझे अच्छा काम देता है, यह मूढ़ तेरी मान्यता है। वह तो जड़ की अवस्था है। तुझे क्या काम दे ? वह तुझे काम देती है ? देखो ! वह काम नहीं देता, और काम देता है, यह मान्यता ही मूढ़ जीव की है - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। वह काम क्या दे ? वे तो उनके काम प्रमाण चले जाते हैं, वे जड़ पदार्थ हैं। जगत के अस्तित्व तत्त्व हैं, अजीव रजकण अस्ति सत् जगत के तत्त्व हैं। उसमें नयी-नयी अवस्था उत्पन्न हो, पुरानी अवस्था व्यय हो, अभाव (हो) उसका सत्वरूप से जाति बनाये रखे - वे जगत के तत्त्व हैं। उसमें उनके कारण, आत्मा को काम दे और वे न दे - यह बात ही कहाँ थी ? आहाहा.. ! नवरंगभाई !

वे चीजें अपने काम-रहित कब हैं ? कि तू तुझे काम दे ? प्रत्येक चीज में प्रतिक्षण अवस्था होती है, अवस्था होना उसका काम है। वह तुझे क्या काम दे ? समझ में आया ? आहाहा ! गजब बात, भाई ! परन्तु इसने कभी सुना नहीं बेचारे ने। आत्मा, रंक-भिखारी हो गया न... रंक... रंक मानो भिखारी, भिखारी। अरे ! मेरे इसके बिना चले नहीं, इसके बिना चले नहीं, इसके बिना चले नहीं... रंक ! ऐ... परवस्तु के बिना चले नहीं ? पर तो स्वतन्त्र

चीज है। समझ में आया? मेरे आनन्द बिना मेरे चले नहीं - ऐसा जो आत्मा, इसके बिना (-पर के बिना) चले नहीं—यह वासना इसने मिथ्याभ्रम खड़ा किया है। समझ में आया? ठीक होगा इसमें, छगनभाई!

देहादिक पदार्थ न जीव के उपकारक ही हैं... ये उपकारक करनेवाले नहीं। तेरी वासना मानती है कि ये मुझे उपकार करते हैं। **न अपकारक ही।** नुकसान करनेवाले नहीं। वे तो ज्ञेय हैं, ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य वस्तु है। वे तुझे नुकसान नहीं करते। तुझे ऐसा हो जाता है (कि) यह प्रतिकूल मुझे नुकसान (करता है)। यह तेरी कल्पना तुझे नुकसान करती है। आहाहा! समझ में आया? सच्चे ज्ञान बिना चौरासी में भटककर मर गया। दया, दान, व्रत, भक्तियाँ भी अनन्त बार की। भला क्या हुआ? मैं कौन हूँ और कहाँ हूँ? कैसे हूँ? इसके भान बिना, ये क्रियायें राग की या पर की मुझे सुखरूप होती है - यह मान्यता मिथ्यात्व की वासना है - ऐसा कहते हैं। आहाहा..! समझ में आया?

वैसे बोले कि जीव को अजीव मानना, यह मिथ्यात्व; अजीव को जीव मानना, यह मिथ्यात्व, बोले पहाड़े। समझे नहीं कुछ उसमें। अजीव की क्रिया मुझसे हो और मेरी क्रिया उससे हो, तब तो दोनों को एक माना। जड़ की दशा आत्मा से हो और आत्मा की दशा जड़ से हो, (तब तो) दो को एक माना। दूसरे को कर्ता माने तो मूढ़ है, कहते हैं। दूसरे जड़ की क्रिया मुझसे होती है - ऐसा माननेवला मूढ़ है - ऐसा यहाँ कहते हैं। शरीर आदि वस्तु है या नहीं? परपदार्थ है या नहीं? या तू ही है उसमें अकेला? तू अलग है और वे भी अलग चीज हैं, दोनों भिन्न-भिन्न चीज है। अन्दर से चैतन्य चला जाता है। हो गया, यह पड़ा तो। यह रहा तो भी इससे और पड़ा रहा तो भी इससे। यह कहाँ तेरी चीज़ थी? आहाहा...! श्वास लो - (ऐसा) यह डाक्टर कुछ कहे। (जाँच) करनी हो न, (तब कहे)। जरा-सा ऊँचा श्वास लो। तुम्हारा वह चाहिए, अन्दर क्या कहलाता है? तुम्हारा रणकारा। वह भी शक्ति नहीं होती, क्योंकि वह आत्मा की क्रिया ही नहीं है; वह तो जड़ की क्रिया है। आत्मा तो जाननेवाला और या मैं करूँ - ऐसा अभिमान / मिथ्यात्व करे, बाकी दूसरा कुछ करे नहीं। आहाहा...! गजब बात भाई!

मुमुक्षु - .....

उत्तर - यह कौन करता था ? धूल ! तुम करते थे वहाँ ?

मुमुक्षु - दुकान किसकी होगी ?

उत्तर - दुकान जड़ की, अजीव की। आत्मा तो अरूपी है - रंग, गन्ध, रस रहित चीज है। इन रंग, गन्ध, स्पर्श में आत्मा आ गया ?

मुमुक्षु - संयोग है।

उत्तर - संयोग है। संयोग का अर्थ क्या है ? पृथक्। संयोग शब्द क्या कहता है ? संयोग-पृथक्। संयोग अर्थात् पृथक्। एक यह अपृथक्; संयोग पृथक् है। गुलाबभाई ! यह अलग प्रकार की पाठशाला है। 'जीवीबेन' को बुलाया है या अपने आप आयी है ? कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा... !

अरे... ! भगवान ! ऐसी मनुष्यदेह तुझे मिली और दो द्रव्यों की एकताबुद्धि रहे, वहाँ तक इसे मिथ्यात्व-भाव टलेगा नहीं। यही बात करते हैं। ऐसे तो दूसरे प्रकार से करते हैं कि इसे उपकारकर्ता नहीं, परन्तु उपकारकर्ता मानता है, इसका अर्थ ही (यह है कि) दो द्रव्यों को एक मानता है। आहाहा... ! यह मिथ्यात्व सूक्ष्म शल्य, मिथ्यादर्शन सूक्ष्म शल्य इसे अनादि से चार गति में भटकाती है। नरक और निगोद, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय - इस भवा-भव, भवा-भव, भटका-भटक, भटका-भटक (करता है)। समझ में आया ?

कल एक आया था, वह पढ़ा ? क्या कहते हैं ? धर्मयुक्त पत्र है, उसमें कल आया था। भाई तब बैठे थे। गुलाबराय ! यह सुना न पहला ? सीधे मरकर सीधे यहाँ आयी है। लो ! जूनागढ़ में थी, लुहार की लड़की, ढाई वर्ष की, मरकर यहाँ आयी। आत्मा यह दिखता है या नहीं प्रत्यक्ष ? आत्मा वह का वही वहाँ था, वहाँ से यहाँ आया, यहाँ से वहाँ जायेगा। भटका-भटक (करता है)। ऐसे शरीर तो अनन्त ऐसे किये; भान नहीं होता कि मैं कौन हूँ और यह क्या होता है और क्या मानता हूँ ? समझ में आया ? शब्द है इसमें ? जेचन्दभाई ! सब है परन्तु अन्दर...

देहादिक पदार्थ न जीव के उपकारक ही हैं और न अपकारक ही।... अर्थात् नुकसान करनेवाले हैं। **अतः परमार्थ से वे (पदार्थ) उपेक्षणीय ही हैं।** क्या

कहा ? उपेक्षा करनेयोग्य अर्थात् जाननेयोग्य है। वे हैं - ऐसा जाननेयोग्य है। उपेक्षणीय - उपेक्षा करनेयोग्य है। मेरे हैं और मुझे ठीक पड़ते हैं, यह मेरे नहीं और मुझे पड़ते नहीं — ऐसा करनेयोग्य परपदार्थ नहीं है। आत्मा के अतिरिक्त के देह, वाणी, मन, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, पैसा, लक्ष्मी, कीर्ति — सब उपेक्षणीय अर्थात् उपेक्षा करने (योग्य है), अपेक्षा करनेयोग्य नहीं। अपेक्षा अर्थात् मुझे ठीक-अठीक है - ऐसा करनेयोग्य नहीं है, परन्तु उपेक्षा करनेयोग्य है कि है, उन्हें मैं जाननेवाला हूँ। समझ में आया ? आहाहा... !

अपेक्षा और उपेक्षा। यह मुझे सुखरूप है — ऐसी कल्पना, वह अपेक्षा हुई, मिथ्यात्व की हुई। यह मुझे दुःखरूप है - ऐसी कल्पना भी मिथ्यात्व की अपेक्षा से की। भगवान आत्मा जाननेवाला, ज्ञायक चैतन्यज्योत, चैतन्यसूर्य है। यह जगत - शरीर, वाणी, मन, सब कर्म पैसा, इज्जत-कीर्ति उपेक्षणीय अर्थात् जाननेयोग्य है, उपेक्षा करनेयोग्य है; आदर करनेयोग्य नहीं है। समझ में आया ? आहाहा... !

यह वासना तूने की है, इसलिए अब छोड़ — ऐसा कहने के लिये कहते हैं। यह वासना तूने खड़ी की है। क्यों की है - इसका न्याय देते हैं। आहाहा... ! परन्तु बाह्य पदार्थ के प्रतिकूलता के घेरे में घिरा हुआ, इसे ऐसा लगता है कि यह मुझे दुःख है। मूढ़ है, घिरा हुआ (कहते हैं परन्तु यह तो) बाहर है, यह सब तो पड़ी है, ऐसे की ऐसी है, अनादि की है। कब नहीं ? ये कहाँ नये तत्त्व हैं जगत के ? नये उत्पन्न हुए हैं ? अस्ति तत्त्व है। है, वह कभी नहीं था - ऐसा नहीं और है, वह कभी नाश हो - ऐसा नहीं। है, वह रूपान्तर हो; रहकर रूपान्तर, अवस्थान्तर, दशान्तर हो। ये तो जगत की चीजें हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु - दुःख देने आये हैं।

उत्तर - बिलकुल (नहीं) मूढ़, कौन कहता है दुःख ? दुःख कहना किसे ? जहाँ आनन्द है, उसे भूले तो यह मेरे हैं — ऐसा माने तो इसे इसकी दशा में दुःख होता है। दुःख नहीं उसमें, (पर में), दुःख नहीं स्वभाव में। आहाहा... ! आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। उसे भूलकर, उसकी दशा में, 'यह मुझे उपकारक है, यह मुझे उपकारक है' — ऐसी वासना, वह दुःखरूप है। वस्तु दुःखरूप नहीं। भगवान! इसका स्वभाव-आत्मा का (स्वभाव) दुःखरूप नहीं। इसका स्वभाव दुःखरूप हो नहीं सकता। वास्तविक तत्त्व हो, वह दुःखरूप होगा ? यह नयी दशा - वासना खड़ी करता है,

वह दु:खरूप है। आहाहा...! समझ में आया? ऐसा भी पाठशाला में नहीं आता होगा, नहीं? भरतभाई! आता होगा? नहीं; सब गप्प मारते हैं, मानो।

मुमुक्षु – कर दिखाये...

उत्तर – कर दिखाये, वह सब समझने जैसा है। क्या कर दिखाये? कर सकता नहीं; यह तो जाननेवाला है। ऐई...! मैं करके दिखाता हूँ – यह मान्यता ही वासना मिथ्याभ्रम है – ऐसा यहाँ तो कहते हैं। गजब भाई! यह पाठशाला तो अलग प्रकार की है। कहा न तुमने?

मुमुक्षु : सबको शिक्षा दी हो वह साहित्य में सच्ची नहीं होगी?

उत्तर : साहित्य में कहाँ से (होवे)? गप्प-गोला मारकर साहित्यकार स्वयं गप्प-गोला मारनेवाला होता है। उस दिन आया नहीं था? उस दिन तुम्हारे कौन? बड़ोदरावाला। आया था न? उस दिन यहाँ व्याख्यान में आया था। वह तो भूल गया बेचारा। यहाँ आया था। कहा, तुम सब गप्पे-गप्प मारनेवाले, वह बेचारा यहाँ आया था। तुम तो पहचानते नहीं होंगे? बड़ोदरावाला... यहाँ बेचारा व्याख्यान में सुनने आया था। वहाँ भूराभाई के यहाँ आया था न? भूराभाई के यहाँ आया था। वैसे तो नरम व्यक्ति परन्तु बेचारों को पता नहीं पड़ता। यह बात का ही पता नहीं पड़ता। सब होशियार नाम धरानेवालों ने सुना नहीं कि किसे कहना होशियारी और किसे कहना कमजोरी?

यह होशियारी तो तेरी उसे कहें कि मैं ज्ञाता-दृष्टा और आनन्द हूँ, पर में मेरा ज्ञान नहीं, पर में मेरा आनन्द नहीं, पर के कारण मेरा विश्वास नहीं, पर अनुकूलता-प्रतिकूलता मेरी चीज में है ही नहीं—ऐसा जानना, मानना वह होशियारी कहलाती है, बाकी सब तो मूढ़ता कहलाती है। आहाहा! गजब, परन्तु बदलना पड़े न लोगों को, हों! बहुत बदलना पड़े, इसलिए लोगों को मुश्किल पड़ता है। पूर्व में ऐसा चला जा रहा हो, उसे वापस ऐसे मुँह फिराना पड़े, यही कहता हूँ। उसे सुनने को ही नहीं मिलता बेचारे को कि यह क्या है, यह...?

अत: परमार्थ से वे (पदार्थ) उपेक्षणीय ही हैं। किन्तु तत्त्वज्ञान न होने के कारण... देखो! तत्त्वज्ञान अर्थात् आत्मा ज्ञानमूर्ति भगवान (है और) शरीर आदि परवस्तु

तो अजीव परतत्त्व है, दूसरे आत्माएँ वे दूसरे तत्त्व, दूसरे जीवतत्त्व हैं। ऐसे भिन्न तत्त्वों का भिन्न का ज्ञान नहीं होने के कारण। **तत्त्वज्ञान न होने के कारण – 'यह मेरे लिये इष्ट है...** देखो, यह भान नहीं होता। तत्त्वज्ञान चैतन्य का और तत्त्वज्ञान इसका (अर्थात् कि) वह जड़रूप (है—ऐसा) उसका भी ज्ञान चाहिए न! शरीर, वाणी, मन, आदि अजीव तत्त्व है। अन्दर लाख प्रतिकूलता हो तो वह उसमें होती है, आत्मा में है नहीं। आत्मा उसे छूता भी नहीं, आत्मा तो अरूपी है, यह तो रूपी है, रंग, गन्ध, रस, स्पर्शवाला यह तत्त्व है।

मुमुक्षु : व्यवहार से रूपी।

उत्तर : धूल में भी नहीं रूपी व्यवहार से। होवे कैसा रूपी? अरूपी कभी रूपी होता होगा? वह तो कर्म के निमित्त की अपेक्षा से कहने में आता है। अरूपी चैतन्य के अरूपी गुण और उसकी अरूपी पर्याय। यह आ गया नहीं नियमसार में? पहले आ गया। समझ में आया? यह गाथा ठीक आ गयी।

'यह मेरे लिये इष्ट है – उपकारक होने से'... देखो! यह मुझे ठीक है, मुझे उपकार करता है। ऐसा शरीर ऐसे विचारा हुआ काम दे। युवा अवस्था में (सोचा हुआ काम देता था) अब सोचा हुआ देता नहीं। देता नहीं न? तेरे लिये कुछ (नहीं) वह तो इसकी क्रिया होती है, इसके कारण। तब जवानी में इसके कारण होती थी, तेरे कारण बिल्कुल हराम... इसकी निरोगता रहती हो और जवानी रहती हो तो वह तो जड़ की-मिट्टी की दशा है। आहाहा!

मुमुक्षु : आरोग्यता

उत्तर : धूल में आरोग्यता पाले और मर जाता है, डॉक्टर भी मर नहीं जाता? ऐ... चन्दुभाई! क्या होगा? ये बड़ा डाक्टर कहलाता है, लो! यह दो-दो डॉक्टर बैठे हैं।

मुमुक्षु : ये आरोग्यता पाले तब...

उत्तर : मर गये। ये आरोग्यता कर-करके यह कितना करे तो भी अन्दर शरीर में हर्ष नहीं होता, यह शरीर तो दूसरी चीज है, चाहे जितना ध्यान रखे नहीं, कैसे होगा? यह भी डॉक्टर है। यह तो तुम, भाई! डॉक्टर कहलाते हैं बड़े राजकोट के! हैं बड़े सिर के फिरे हुए!

मुमुक्षु : आपरेशन नहीं कर सकते।

उत्तर : कुछ नहीं होता, कुछ किया ही नहीं, यह बात ही खोटी है। एक रजकण भी, उसकी पर्याय अर्थात् अवस्था पलटे, वह उसके रजकण के कारण (पलटती है) दूसरे रजकण से भी जिसकी पर्याय पलटती नहीं तो आत्मा से पलटती है, यह मूढ़ ने मानी हुई बात है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

उत्तर : यह जड़ की है तो उसकी शक्ति बिना का इसने माना है। तत्त्व माना है। तत्त्व है या नहीं? तत्त्व है या नहीं? तो तत्त्व, वह भावरहित होता है? मालिक मूढ़ होता है न, इसलिए मानता है मानो कि उसमें कोई शक्ति नहीं। एक-एक रजकण में एक समय में चौदह ब्रह्माण्ड चले जाने की ताकत है। एक रजकण - पॉइण्ट, हाँ! इसका अन्तिम (रजकण) यह तो बहुत रजकण एकत्रित हुए, उनका पिण्ड है। पॉइण्ट, अन्तिम पॉइण्ट जिसके दो टुकड़े नहीं हों, वह एक समय में चौदह ब्रह्माण्ड चला जाये ऐसी ताकत है—(ऐसा) भगवान कहते हैं। रजकण है न? तत्त्व है या नहीं? तत्त्व है या नहीं? तत्त्व का सत्त्व कुछ होगा या नहीं? तत्त्व में सत्त्वरहित सत् होगा? सत् है, उसे सत्त्व नहीं, सत्त्व नहीं अर्थात् शक्ति नहीं, गुण नहीं, स्वभाव नहीं, सामर्थ्य नहीं - ऐसा कभी होता है? समझ में आया? इसी प्रकार रजकण भी सत् है। तो उसमें उसका सत्त्व है, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, क्रिया रूपान्तर होना, उसका वह सत्त्व है; आत्मा का है नहीं। समझ में आया?

यह मेरे लिये इष्ट है... यह स्त्री बहुत अनुकूल, मेरे बहुत अनुकूल है। दूसरे को होगा परन्तु मेरी स्त्री तो... आहाहा! ...परन्तु मूढ़पना खड़ा करके आरोप डालता है उसमें।

मुमुक्षु : होवे इसलिए कहे न?

उत्तर : किसे होवे? वह तो परद्रव्य है, वह तो परवस्तु है। उसकी भाषा आदि जड़ की है और उसका भाव है, वह तो तुझसे पर उसके आत्मा का भाव है। उसमें तेरा कहाँ से आ गया उसमें? आहाहा!

यह मेरे लिये इष्ट है... ये मेरे सब अंगी हैं, अंगी हैं—ऐसा बोलते हैं या नहीं? हमारे अंगी हैं, ये सब अंगी अर्थात् जैसे अंग है न यह मेरा? अंगी का अंग - अवयव

(होवे) वैसे ये सब मेरे अंगी हैं, स्त्री, पुत्र, परिवार, पैसा, मकान (अंगी हैं)। धूल में भी नहीं। तू अंग और उसके अंगी ऐसा है यह? तेरा आत्मा अलग, उनका अलग, उसके बदले तेरे अंगी यह कहाँ से आ गया? समझ में आया?

यह तो सत्य की बात में असत्य को फोड़ना हो, उसकी बात है। अनादि से असत्य मानकर मूढ़ता का सेवन कर रहा है, उसे तोड़ना हो तो यह उसका एक उपाय है, बाकी तो दुःखी हो रहा है। साधु होवे तो मर गया ऐसा करके। मैंने यह किया और यह मैंने किया, और मैंने पर की दया पालन की... समझ में आया? व्रत का भाव पुण्य, वह मैंने पालन किया और मैंने किया, वह विकार का कर्ता होता है। समझ में आया? वह मूढ़ और मिथ्यादृष्टि (की) वासना मिथ्यात्व से खड़ा किया भाव है। आहाहा! गजब बात भाई!

'यह मेरे लिये इष्ट है – उपकारक होने से'... वापस न्याय दिया। वह उपकारक है, कितना उपकार करता है?

मुमुक्षु : भगवान की वाणी कितना उपकार करती है?

उत्तर : उपकार करे, वह अपनी पर्याय को स्वयं करे, तब वाणी को (निमित्त) कहा जाता है। वाणी किसका उपकार करे? आहाहा!

'यह मेरे लिये अनिष्ट है–अपकारक होने से।' यह स्त्री, पुत्र, परिवार मेरे घर में जब से आये, तब से तो छह परखी घर में से पैसा गया, सब गया और यह हुआ। होली, व्यर्थ में मानता है, सुन न अब! इनके कारण कुछ नहीं, वह वस्तु तो पर है।

मुमुक्षु : होता है ऐसा।

उत्तर : होता कुछ नहीं। उसे निमित्त-कुदरती होना हो और उस प्रमाण हो, उसमें कोई इनके कारण हुआ है?

यह मेरे लिये अनिष्ट है... पैसा, वस्त्र में मानता है, हों! यह वस्त्र जबसे पहना तब से चैन नहीं, जला डालो। मकान ठीक (न होवे तो) उसका भ्रम पड़ जाता है। मकान बनाया हो न? पचास हजार-लाख का बनाया हो। इस मकान में आये, तब से रोग क्यों नहीं मिटता? नीचे कुछ होगा? मुर्दा दबाया होगा किसी ने? होता है या नहीं? ऐसे अज्ञानी मानता है, मूढ़ मानता है। आहाहा! परवस्तु मुझे अहितकर है, अपकारक है। यह अनिष्ट

मानकर ऐसा कहता है, यह बात ही एकदम झूठ है। अरे... ! भाई ! यह तो पूरे संसार का ***ओटलो*** जलाना हो, उसकी बात है। बापू ! संसार में भटकना हो, उसे यह बात जँचे ऐसी नहीं है।

ऐसे विभ्रम से उत्पन्न हुए संस्कार... देखो ! ऐसे विभ्रम से उत्पन्न हुए संस्कार। देखो ! विभ्रम से उत्पन्न हुए संस्कार, हों ! कर्म के कारण नहीं, पर के कारण नहीं। **ऐसे विभ्रम से उत्पन्न हुए संस्कार...** भ्रम से संस्कार उत्पन्न करता है। यह मुझे इष्ट है, इसलिए उपकारक है; यह अनिष्ट है, इसलिए अपकारक है, यह विभ्रम से संस्कार खड़ा करता है; कर्म के कारण नहीं, उस परपदार्थ के कारण नहीं। मिथ्यादृष्टि जीव, विभ्रम से उत्पन्न किये हुए (संस्कार) **जिन्हें वासना भी कहते हैं – इस जीव के हुआ करते हैं।** देखो ! इस जीव को – मूढ़ को वासना आदि हुआ करते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

बड़ी-बड़ी दुकानें चलाता हो न ! बसन्तलालजी ! ऐसे पाँच-पाँच लाख की 'मूलजी जेठा मार्केट' कैसी-कैसी बड़ी दुकान चलती, वहाँ एक बार गये थे। वे सब मानो ऐसे बैठे थे, कैसे होशियार होंगे वहाँ ! नहीं ? दुकान पर बैठा हो और ऐसे गल्ला पड़ा हो और ऐसे बैठा हो, दो-पाँच लाख का माल (आता हो...) रेशम की गाँठें पड़ी हों, ग्राहक आवे तो, ऐसे राजा-रानी निकले हों और पाँच-पाँच, दस-दस हजार का ले जावे न... आहाहा ! प्रसन्न.. प्रसन्न.. हो गया ! मूढ़ है, कहते हैं। भाई ! इस परपदार्थ के मेले में तुझे क्या ठीक पड़ा ?

मुमुक्षु : .....

उत्तर : धूल, यह तो पाप का उदय हो तो ऐसा होता है। उसमें आत्मा के कारण क्या है ? पूर्व का पाप का उदय हो तो कमाने के बदले जाते हैं (नुकसान होता है)। उसमें क्या है ? उसमें आत्मा को, जावे तो अपकारक क्या है ? और आवे तो लाभदायक क्या है ? आहाहा ! यह ***बलखो*** भी निकालना लोगों को कठिन पड़ता है।

मुमुक्षु : अमल में रखे...

उत्तर : यह अमल में रखना। श्रद्धा में ले कि यह वस्तु मुझे नुकसान अथवा अपकारक अथवा लाभदायक है नहीं। मेरा आत्मा आनन्ददायक, वह लाभदायक है और

मैं विपरीत राग-द्वेष करूँ, वह मुझे नुकसानकारक है। बाकी कोई चीज लाभ या नुकसानकारक पर में है ही नहीं। आहाहा! **इस जीव के हुआ करते हैं।** देखो! इस जीव को वासनायें हुआ करती हैं, कर्म के कारण नहीं। वह कहते हैं विभ्रम। विभ्रम के कारण वासना।

मुमुक्षु : विभ्रम किससे होता है ?

उत्तर : विभ्रम स्वयं से होता है। किससे होता है क्या ?

मुमुक्षु : वह तो कर्म से होता है।

उत्तर : भ्रमरहित आत्मा भ्रम उत्पन्न करता है। कर्म के कारण होता है ? कर्म तो जड़ है, मिट्टी-धूल है। परद्रव्य तुझे नुकसान करेगा ? वासना उत्पन्न करेगा ? दोष उत्पन्न करेगा ? नहीं। ऐसा का ऐसा मूढ़ को माने, दर्शनमोहनीय का उदय हो तो आत्मा को भ्रम होता है। जड़ तुझे भ्रम कराता होगा ? यह परद्रव्य मुझे नुकसानकारक है - ऐसा माना।

मुमुक्षु : शास्त्र में आता है।

उत्तर : यह आवे वह तो निमित्त का कथन है। क्या आवे ? समझ में आया ?

अतः ये सुख-दुःख विभ्रम से उत्पन्न हुए संस्कारमात्र ही हैं,... इतनी सब व्याख्या की, देखो! **ये सुख-दुःख विभ्रम से उत्पन्न हुए संस्कारमात्र ही हैं,...** संस्कार में इसने कल्पना की है कि यह मुझे अनुकूल है, यह मुझे प्रतिकूल है। यह विभ्रम से तूने उत्पन्न किया है। यह संसार है। यह संस्कार, वह संसार है, वह दुःख है, वह भ्रम है, वही परिभ्रमण का कारण है। समझ में आया ?

स्वाभाविक नहीं। अब यहाँ कहना है। यह वस्तु स्वाभाविक नहीं, यह आत्मा का स्वभाव नहीं; यह तो संस्कार खड़े किये हुए विकृत भाव है, जो स्वभाव में नहीं है। स्वभाव में तो आनन्द और ज्ञान, शान्त निर्विकारी, सम्यक्श्रद्धा शान्ति उत्पन्न करे - ऐसा इसका स्वभाव है। यह (विकृति) उत्पन्न करे, ऐसा इसका स्वभाव नहीं परन्तु उत्पन्न करके भ्रम से मानता है। **स्वाभाविक नहीं।** यह संस्कार स्वभाव के नहीं। पर से हुए नहीं, स्वभाव के नहीं। विकार / विभ्रम पर्याय में नया अनादि से उत्पन्न किये जाता है और भटकता जाता है। चौरासी के अवतार-नरक और निगोद, किसी समय सेठ और किसी समय रंक तथा

किसी समय भिखारी और किसी समय नरक और किसी समय पशु... अनन्त काल से चार गति में भटककर मर गया। पच्चीस-पचास वर्ष जहाँ मनुष्यपना मिले और जहाँ यह कुछ मिले वहाँ.... आहाहा! (हो जाता है) धूल भी नहीं, सुन न अब, वह तो परचीज है। समझ में आया?

ये सुख-दुःख उन्हीं को होते हैं, जो देह को ही आत्मा माने रहते हैं। देखो, भाषा! इसका सारांश आया। यह सुख-दुःख की कल्पना उसे होती है कि जो परद्रव्य को निज मानता है, उसे। देह और परद्रव्य को अपना माने, तब यह मुझे उपकारक और अपकारक मान सकता है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : पर को निज मानने में क्या बाधा है?

उत्तर : पर इसका था कब? पर तो पृथक् रहे। पर पृथक् / भिन्न है। अनन्त पर-पदार्थ हैं, सब भिन्न-भिन्न (है), किसी का किसी में प्रवेश नहीं और कोई किसी को वास्तव में तो स्पर्श भी नहीं करते। आहाहा!

ये सुख-दुःख उन्हीं को होते हैं जो देह को ही आत्मा माने रहते हैं। देखो! भाषा, सारांश में यह लिया कि शरीर वह मैं—ऐसा माननेवाले सभी पदार्थ अनुकूल, वह मुझे ठीक और प्रतिकूल, वह अठीक (ऐसा मानते हैं) हेतु तो वह देह मैं हूँ (ऐसा मानते हैं) यह है। परन्तु मैं आत्मा आनन्द-ज्ञान हूँ—ऐसी इसे आत्मा की-स्व की श्रद्धा और स्व का भान नहीं है। भूराभाई! बात ऐसी है, हों! लाख बात लोग करें वे सब खोटी-खोटी, सब गप्प है।

मुमुक्षु : इतने सब खोटे।

उत्तर : अनादि के अधिकतर खोटे ही होते हैं। चींटियाँ तो बहुत होती हैं, इसलिए कहीं सब मनुष्य हो गये? नगरा चींटियों को बहुत होता है... नगरा समझते हो? चींटियाँ नहीं होतीं? प्रत्येक गाँव चींटियों का नगरा बहुत होता है। इसलिए सब मनुष्य हो गये? ऐसे संख्या अधिक हो, इससे कहीं सत् हो गया? समझ में आया?

यह शब्द देखो! अन्तिम सार कहा है, हों! भगवान आत्मा मैं ज्ञान और आनन्द हूँ। देखो! यह इष्टोपदेश! पूज्यपादस्वामी का इष्टोपदेश। यह हितकारी उपदेश, यह हितकारी

उपदेश। पूज्यपादस्वामी दिगम्बर मुनि कहते हैं कि इसका नाम इष्टोपदेश कि परद्रव्य की क्रिया से मुझे लाभ-अलाभ माने, वह देह को ही अपना मानता है। समझ में आया?

ऐसा ही कथन अन्यत्र भी पाया जाता है... दूसरे श्लोक का आधार लेते हैं। **इस श्लोक में दम्पतियुगलक वार्तालाप का उल्लेख कर यह बतलाया गया है...** पति-पत्नी दो थे, उनका एक दृष्टान्त देते हैं। अन्दर श्लोक है।**'वे विषय जो पहिले अच्छे मालूम होते थे, वे ही मन के दुःखी होने पर बुरे मालूम होते हैं।'** दृष्टान्त देते हैं। जो पहले अच्छे लगते थे, स्त्री, पुत्र और यह पैसा, भोग, स्त्री, और आहाहा... कोमल हाथ **सुणमाला** और बोल मीठे... यह सब अच्छा लगता था। यह मन में कुछ चिन्ता हो, उस काल में वे ही चीजें दुःखरूप लगती हैं। ठीक है? यह दृष्टान्त देते हैं, हों!

घटना इस प्रकार है - पति-पत्नी दोनों परस्पर में सुख मान, लेटे हुए थे... सुखी मानकर सो रहे थे। हम सुखी हैं। **पति किसी कारण से चिंतित हो गया।** मन में एकदम विचार आया कि अरेरे! ये सट्टा किया है, इसमें निश्चित पाँच लाख जायेंगे। ऐ.. मलूपचन्दभाई! चले जायेंगे। अरे! अभी आयेगी, खबर पड़ेगी, कोई न कोई मेरा दुश्मन जगा है... हाय... हाय...! कल्पना... कल्पना... कल्पना... देखो! **किसी कारण से चिंतित हो गया।** समझ में आया? कोई भी ऐसा कारण मन में उत्पन्न हुआ। पति-पत्नी दो हैं। साथ में सो रहे हैं, उसमें इसे चिन्ता उत्पन्न हुई। ओहो! अरे! या तो बीस वर्ष का लड़का हो और टीबी हुआ हो, ऐसा पत्र आया हो। समझ में आया? इसमें आँख में से आँसू की धारा... भाई आती है। उसे टीबी का असर है। आहा! इस विचार में चिन्ता चढ़ गयी, चिन्तित (हो गया) कोई खोट गयी, चिन्तित हुआ कि लड़की विधवा या कोई अपने शरीर में से ऐसा विचार हुआ कि इस शरीर में कोई रोग लगता है। छह महीने से कुछ होता नहीं... निश्चित ऐसा कैंसर होगा।

चिंतित हो गया। पत्नी पति से आलिंगन करने की इच्छा से अंगों को चलाने और रागयुक्त वचनालाप करने लगी।... अपने शरीर की चेष्टा करने लगी और वचन से मीठे-मीठे वचन बोलने लगी। **किन्तु पति जो कि चिंतित था,...** वह तो चिन्ता में था, विचार में चढ़ गया था। आहाहा! क्या होगा? पाँच लाख आये हैं, अपन ने

रखे हैं, एक घर के व्यक्ति को पता है और वह व्यक्ति अभी दुश्मन हो गया है। अब वह व्यक्ति यदि अभी ही किसी को लायेगा... यह क्या करता है अभी ? ले जाये तो ले जाये परन्तु फिर कैद में **खोहसे।** (पति) **चिंतित था, कहने लगा 'मेरे अंगों को छोड़,...** हे स्त्री ! छोड़ मेरा शरीर, मैं चिन्तित हूँ। भान नहीं तुझे ? अभी यह कहाँ कल्पना करता है ? **तू मुझे संताप पैदा करनेवाली है।** देखो ! सुख देनेवाली थी न ? कल्पना में चढ़ा है और (इसलिए कहता है) छोड़ दे अभी, अभी मुझे तुझसे हृदय में दुःख होता है। तुझसे (मुझे दुःख होता है) ऐसा कहता है देखो !

तू मुझे संताप पैदा करनेवाली है। और पहले कहता था न, यह मक्खन जैसा शरीर सुन्दर रूपवान ऐसा और वैसा हाथ फेरे वहाँ। आहाहा ! देखो न मधुर वचन बोले। छोटा लड़का बोले न ? ऐसे मँ... मँ... मँ... मँ... ऐसे वचन (बोले) आहाहा ! यह तू कहता था और यह मुझे ठीक है, कहाँ गया ? आहाहा ! मुझे छोड़। **हट जा। तेरी इन क्रियाओं से मेरी छाती में पीड़ा होती है।** देखो भाषा ! हों ! जब तेरे कारण सुख (लगता) था, अभी मुझे जहर जैसी लगती है, छोड़ दे। समय को पहचानती नहीं। कहाँ क्या है ? मुझे क्या होता है ? तुझे भान नहीं। **दूर हो जा। मुझे तेरी चेष्टाओं से बिलकुल ही आनन्द या हर्ष नहीं हो रहा है।'** तेरी चेष्टा और अनुकूलता में अभी मेरा लक्ष्य नहीं है। समझ में आया ? मेरा लक्ष्य अन्यत्र चढ़ गया है।

मुमुक्षु : ....मुझे हैरान करती है...

उत्तर : सुनेगा इसका अर्थ हुआ न ! यह आया, ऐसी भाषा आायी हैरान करती नहीं परन्तु मेरा लक्ष्य अन्यत्र है (तो कहता है कि) तू नुकसान करनेवाली है।

कहते हैं न यहाँ ? **तू मुझे संताप पैदा करनेवाली है। हट जा। तेरी इन क्रियाओं से मेरी छाती में पीड़ा होती है। मुझे तेरी चेष्टाओं से बिलकुल ही आनन्द या हर्ष नहीं हो रहा है।'** भाषा ऐसी ली है, देखा ? पहली उसकी मान्यता है, हों ! उससे नहीं, पहले वह मानता था कि यह मुझे अनुकूल है, फिर उस कल्पना में मान्यता बदल गयी। समझ में आया ?

दूसरा श्लोक है **रमणीक महल, चन्दन, चन्द्रमा की किरणें (चाँदनी),...**

यह साहित्यकार बहुत लड़ाते हों, हाँ! रंजन करके पुस्तक का पैसा लेना हो न! **रमणीक महल, चन्दन, चन्द्रमा की किरणें (चाँदनी),...** चाँदनी अर्थात् (चन्द्र का) प्रकाश होता है न? **वेणु,...** समझ में आया? ऊँचा बाँस आदि होता है न? फर्स्टक्लास ऐसा रंगा हुआ और रंग आदि (होवे) **वीणा तथा यौवनवती युवतियाँ (स्त्रियाँ) आदि योग्य पदार्थ भूख-प्यास से सताये हुए व्यक्तियों को अच्छे नहीं लगते।...** पेट में भूख कुरकुरिया बोलता हो ऐसे... ऐसे, उसमें यह सब अनुकूल उस समय अच्छा नहीं लगता। भाई! रोटी लाओ न अब। जो कुछ सूखा हो तो सूखा। सबेरे की रोटी है या नहीं? तू तो रोटी को साढ़े नौ करे, रात की पड़ी है या नहीं? लाओ रोटी। अन्दर पीड़ा-भूख लगती हो न? **व्यक्तियों को अच्छे नहीं लगते।** ये सब चीजें अच्छी लगती हों (परन्तु) पेट में भूख ऐसी हो, ऐसी हो... फिर अभी आशा न हो कि अभी कब होगी? आहाहा! अरे! तीन घण्टे में होगी? यह दूधपाक होगा। आज मामा के यहाँ भोजन का (निमन्त्रण) आया, वहाँ दो बजे दूधपाक होगा। हाय... हाय! यहाँ भूख लगी साढ़े नौ बजे और यह घर की महिला पकायेगी नहीं। अभी क्या? अपने को जीमने तो जाना है परन्तु जीमने दो बजे जाना है, किन्तु यहाँ भूख लगी उसका क्या करना अभी? परन्तु (अभी) खाओगे तो फिर वह दूधपाक कब खाया जायेगा? ऐ... छगनभाई! लड़के को भूखा रखे, पता है? ऐसा हो तो दो घण्टे पहले (रखे), भूखा रखे और घर में नहीं पकावे। यहाँ खाये, फिर वहाँ क्या खायेगा? आहाहा! यह सब देखा हुआ, देखा हुआ अनुभूत है, हों!

व्यक्तियों को अच्छे नहीं लगते। पेट में भूख लगी, त्रास लगी... आहाहा...! **ठीक भी है, अरे! सारे ठाटबाट सेर भर चाँवलों के रहने पर ही हो सकते हैं।** कहते हैं कि पेट में अनाज हो तो फिर दूसरा ठीक लगे, ऐसा अज्ञानी को भासता है। यह अच्छी चीज हो तो भी खराब लगती है। समझ में आया? ठाटबाट, सेर भर चावल पेट में कुछ पड़े हों न फिर कहे... हाँ... **अर्थात् पेट भर खाने के लिए यदि अन्न मौजूद है, तब तो सभी कुछ अच्छा ही अच्छा लगता है।** लो! और **अन्यथा (यदि भरपेट खाने को न हुआ तो) सुन्दर एवं मनोहर गिने जानेवाले पदार्थ भी बुरे लगते हैं।** यहाँ भूख लगी है, यहाँ आँख में अंधेरा आता है... समझ में आया? कल शाम को थोड़ा खाया था, पेट को ठीक नहीं था और यह ऐसी भूख लगी है और यह... उस समय अच्छी चीजें भी पेट में

पड़ा हुआ नहीं (और) भूख लगी है तो अच्छी नहीं लगती है। वे चीजें अच्छी-बुरी नहीं हैं, इसे अच्छी नहीं लगती। पहले अच्छी लगती थी, फिर अच्छी नहीं लगती। वे चीजें अच्छी लगती हों तो सदा अच्छी लगना चाहिए। समझ में आया? सिद्धान्त यह सिद्ध करना है।

यह चीज अच्छी-बुरी नहीं है ये चीजें पहले (अच्छी) मानी थी। आहाहा! जहाँ पेट में भूख या दूसरा कुछ हुआ तो ऊँ... हु...हु...हु... बस! हो गया। यह तो तेरी कल्पना थी। वे चीजें अनुकूल-प्रतिकूल हैं, इसलिए सुख-दुःख है - ऐसा नहीं है। ओहोहो! घबराया हुआ हो न घबराया हुआ? ऐसे वस्तु दे, वह तो दुश्मन अच्छी वस्तु देता हो तो इसे ऐसा लगता है कि यह जहर देता है, घबराये। मुझे क्या देते हो? दूध क्या? दूध में जहर नहीं न? इस चाय में कुछ डाला नहीं न?

राजा को बहुत डर होता है, हों! बड़ा राजा पहले कुत्ते को खिलाते हैं, बड़े राजा हो न? एक कुत्ता रखा हो, उस कुत्ते को पहले चखाते हैं। यदि न मरे तो खाते हैं। नहीं तो... ऐसे-ऐसे त्रास पड़े हुए को-इन मूढ़ों को सुखी कहा जाये? समझ में आया? जिसके खाने में भी पराधीनता का पार न हो। कुत्तेवाला बुलाओ, भाई! हम करोड़ के जमींदार हैं, किसी ने राज्य में खटपट से किसी ने कुछ किया हो तो? ऐसे बोले नहीं, भाषा ऐसी नहीं बोले परन्तु पहले अपन कुत्ते को चखायें। समझ में आया? रानी को पीने दो। राजा को पिलाने के लिये जहर का प्याला रानी ने तैयार किया हो राजा को पता पड़ गया, पियो पहले तुम। हाय... हाय...! देखो कुछ नहीं होगा पीले! ...पता पड़ जाये कि इसमें जहर है। समझ में आया? पीले! फिर पिया, मर गयी। क्या है परन्तु? किसे कहना अच्छा और किसे कहना बुरा? अच्छी रानी, रानी करता हो और उसे कहे कि अब जहर पी ले, अनिष्ट लगा (तो कहे) यह तो मार डालना चाहती है। समझ में आया?.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)